बिज़नेस स्टैंडर्ड
वर्ष 12 अंक 206

ऋण माफी का संकट

राजनीतिक दल कुछ राज्यों के विधानसभा चुनाव से पहले एक बार फिर किसानों को लुभाने में जुट गए हैं। उदाहरण के लिए कांग्रेस ने हरियाणा और महाराष्ट्र में किसानों का कर्ज माफ करने का वादा किया है। वहीं सत्ताधारी भारतीय जनता पार्टी ने हरियाणा में ब्याज रहित ऋण देने की घोषणा की है। महाराष्ट्र में पार्टी पहले ही ऋण माफी कर चुकी है।

कर्ज माफी के पीछे सीधे तौर पर राजनीतिक कारण होते हैं और कहा जा सकता है कि इनसे कर्ज का बोझ कम होता है और किसान निवेश करने में सक्षम होते हैं जो भविष्य में उत्पादकता बढ़ाने वाला साबित होता है। लेकिन कर्ज माफी एक किस्म का नैतिक संकट पैदा करती है और कर्ज लेने वालों में डिफॉल्ट की प्रवृत्ति को बढ़ावा देती है। समाचार पत्र की रिपोर्ट के मुताबिक कृषि क्षेत्र की सकल गैर निष्पादित परिसंपत्ति (जीएनपीए) एक लाख करोड़ रुपये का आंकड़ा पार कर चुकी है। इस क्षेत्र को दिए गए कुल ऋण के अनुपात के रूप में जीएनपीए की हिस्सेदारी अब 11 फीसदी है और बीते दो वर्ष में यह 30 फीसदी बढ़ा है।

ऐसे समय में जब औद्योगिक क्षेत्र में बैंकिंग व्यवस्था बढ़े हुए एनपीए से जूझ रही है तब किसानों के फंसे कर्ज में इजाफा वित्तीय क्षेत्र की दिक्कतों को बढ़ाने का काम ही करेगी। संभव है कि कृषि क्षेत्र के कुछ कर्जदारों ने विभिन्न वजहों से डिफॉल्ट किया हो, मसलन कम उत्पादन मूल्य आदि लेकिन इस बात के भी प्रमाण हैं कि कर्ज माफी ने ऋण संस्कृति को प्रभावित किया है। भारतीय रिजर्व बैंक के कृषि ऋण की समीक्षा करने वाले आंतरिक कार्य समूह ने दर्शाया है कि 2017-18 और 2018-19 में ऋण माफी की घोषणा करने वाले सभी राज्यों में एनपीए का स्तर बढ़ा है। अन्य राज्यों में या तो कोई खास अंतर नहीं आया या फिर एनपीए गिरा है। इस संदर्भ में रिपोर्ट कहती है इससे नैतिक संकट की मौजूदगी का संकेत मिलता है क्योंकि लोग कर्ज माफी की उम्मीद में जानबूझकर डिफॉल्ट कर रहे हैं।

कर्ज माफी न केवल बैंकों के लिए संकट खड़ा कर रही है बल्कि यह कर्जदारों और सरकार के लिए भी दिक्कतदेह है। यह ऋण प्रवाह को बाधित करती है क्योंकि बैंक उन राज्यों में किसानों को कर्ज देने के अनिच्छुक हैं जहां अतीत में कर्ज माफी की घोषणा की जा चुकी है। ऋण प्रवाह में कमी किसानों को प्रभावित कर सकती है और उन्हें कहीं अधिक ऊंची दर पर अन्य स्रोतों से ऋण लेना पड़ सकता है। इसके अलावा हालांकि ऋण माफी का क्रियान्वयन एक अंतराल में होता है लेकिन यह सरकार की वित्तीय स्थिति को प्रभावित करती है। आरबीआई के अनुमान के अनुसार 2017-18 में राज्यों के राजस्व व्यय में आए विचलन में करीब एक तिहाई के लिए भी ऋण माफी को उत्तरदायी माना जा सकता है। चूंकि सरकार के पास सीमित राजकोषीय गुंजाइश है, ऋण माफी से राज्य की निवेश क्षमता प्रभावित होती है। इसमें कृषि क्षेत्र का निवेश भी शामिल है। इसका असर उत्पादकता पर पड़ सकता है।

समेकित स्तर पर देखें तो चूंकि ऋण माफी से व्यवस्थागत रूप से कोई लाभ नहीं मिलता है इसलिए इससे बचा जाना चाहिए। इतना ही नहीं यह कृषि क्षेत्र की बुनियादी समस्या को भी नहीं हल करती। उसके लिए व्यापक सुधारों की आवश्यकता है। बहरहाल, कहने की आवश्यकता नहीं कि किसानों की सहायता का अधिक बेहतर तरीका प्रत्यक्ष नकदी हस्तांतरण है जिसे केंद्र सरकार तथा कुछ राज्यों ने अपनाया भी है। इसका एक लाभ यह भी है कि ऐसी योजनाएं अधिक से अधिक किसानों को बैंकिंग के दायरे में लाती हैं और उन्हें अधिक अनुकूल शर्तों पर ऋण पाने का पात्र बनाती हैं।

अजय मोहंती

चीन का उत्थान और उसकी चुनौतियां

राजनीतिक वैधता के लिए उच्च आर्थिक वृद्धि दर पर निर्भर शासन व्यवस्था के लिए मौजूदा आर्थिक सुस्ती बड़ी समस्या बनकर उभरी है। इस संबंध में विस्तार से जानकारी दे रहे हैं हर्ष वी पंत

चीन में कम्युनिस्ट पार्टी के शासन के 70 वर्ष पूरे होने का जश्न पूरे शानो-शौकत से मनाया गया। इस मौके पर सैन्य टुकड़ियों एवं हथियारों की परेड के साथ चीन ने अपनी बढ़ती ताकत का प्रदर्शन किया। हाइपरसोनिक ड्रोन एवं अंतर-महाद्वीपीय बैलिस्टिक मिसाइलें भी प्रदर्शित की गईं। चीन के रक्षा मंत्रालय के मुताबिक, इस परेड में 15,000 सैन्य जवानों के साथ 580 सैन्य उपकरणों एवं 160 विमानों ने हिस्सा लिया। चीन में साम्यवादी शासन के संस्थापक माओत्से तुंग की तरह ताकतवर एवं प्रभावी स्थान हासिल कर चुके चीन के राष्ट्रपति शी चिनफिंग ने इस मौके पर ऐसा भाषण दिया जो आंतरिक के साथ-साथ विश्व समुदाय को भी संबोधित था। माओ ने 1 अक्टूबर, 1949 को जहां से चीनी जनवादी गणराज्य की स्थापना की घोषणा की थी, वहीं पर खड़े होकर शी ने कहा, 'इस महान राष्ट्र का रुतबा डिगाने की ताकत किसी के भी पास नहीं है। कोई भी ताकत चीनी अवाम एवं राष्ट्र को आगे बढ़ने से नहीं रोक सकती है।'

वैसे माओ की विरासत अब भी विवाद का विषय है क्योंकि सत्ता पर कब्जा करने के उनके 'ग्रेट लीप फॉरवर्ड' अभियान के दौरान लाखों लोग मारे गए थे। इसके अलावा समूचा चीन कई वर्षों तक चली सांस्कृतिक क्रांति के दौरान हिंसा की चपेट में रहा था। माओ के 1976 में निधन के बाद शासन की बागडोर संभालने वाले तंग श्याओ फिंग ने आर्थिक सुधारों का सिलसिला शुरू किया था जिसे आज के समय में वैश्विक आर्थिक महाशक्ति के रूप में चीन के नाटकीय उदय के लिए श्रेय दिया जाता है। गत चार दशकों में चीन ने व्यापक बाजार सुधार किए हैं जिसके फलस्वरूप उसकी अर्थव्यवस्था के दरवाजे बाकी दुनिया के लिए खुल गए और करोड़ों लोग गरीबी के दलदल से बाहर आ सके। बड़ी चुनौतियों के बीच एक राष्ट्र के उदय की यह उल्लेखनीय कहानी बताती है कि दुनिया के निर्धनतम देशों में शुमार देश आज वैश्विक आर्थिक एजेंडा तय करने की हैसियत में आ खड़ा हुआ है।

चीन ने आज अपने वैश्विक आर्थिक विकास के अगले चरण पर ध्यान केंद्रित किया हुआ है। इसके लिए उसने 'बेल्ट एवं सड़क पहल' के रूप में वैश्विक ढांचा एवं संपर्क का महत्त्वाकांक्षी नजरिया दुनिया के समक्ष रखा है। इस पहल को लेकर गहरा विवाद बना हुआ है और इसे कई चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है लेकिन इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता है कि इसने संपर्क के मुद्दे पर वैश्विक विमर्श को ही बदलकर रख दिया है। इसके चलते बड़ी शक्तियों को भी अपना वैकल्पिक प्रस्ताव लाने के लिए मजबूर होना पड़ रहा है।

पिछले कुछ वर्षों में सत्ता पर अपना दबदबा कायम करने के बाद शी ने पुराने वैभव को बहाल करने के 'चीनी स्वप्न' को पुनर्जीवित करने की जरूरत पर लगातार जोर दिया है। शी के कार्यकाल में चीन ने अपने अभ्युदय की घोषणा से जुड़ा संकोच त्याग दिया है और अपनी वैश्विक हैसियत को लेकर उसका दावा साफ नजर आता है।

एक समृद्ध एवं सशक्त देश के तौर पर चीन के विकास में चीनी कम्युनिस्ट पार्टी की भूमिका रेखांकित करना भी जरूरी है। आखिर, यह दल ही चीन की मौजूदा सत्ता के वजूद का कारण है। और अभी तक चीनी कम्युनिस्ट पार्टी राष्ट्रीय मामलों को संभालने में काफी सफल रही है और साम्यवादी शासन के मामले में यह सोवियत संघ से अधिक पुरानी हो चुका है।

चीनी कम्युनिस्ट पार्टी यह उम्मीद कर रही होगी कि सत्ता की 70वीं वर्षगांठ के समारोह ऐसे समय में उसकी पकड़ मजबूत करेंगे, उसकी वैधता पुख्ता होगी और लोकप्रिय समर्थन बढ़ेगा जब चीन को आर्थिक एवं राजनीतिक दोनों मोर्चों पर तमाम चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। ट्रंप प्रशासन ने वैश्विक व्यवस्था में चीन को समाहित करने को लेकर वॉशिंगटन में बनी दशकों पुरानी राजनीतिक सहमति त्याग दी है। अब यह विभिन्न स्तरों पर चीन के साथ तनातनी की मुद्रा में है। सबसे बड़ी समस्या कारोबार के क्षेत्र में है जहां दुनिया के दो सर्वाधिक ताकतवर देशों के बीच व्यापार युद्ध जोर पकड़ता जा रहा है। इससे चीन की अर्थव्यवस्था को भी चोट पहुंची है और उसकी वृद्धि दर में गिरावट आई है। अपनी राजनीतिक वैधता के लिए जनता को उच्च आर्थिक वृद्धि देने पर लंबे समय से निर्भर राजनीतिक व्यवस्था के लिए यह एक बड़ी समस्या है।

रणनीतिक स्तर पर चीन को विस्तारित हिंद-प्रशांत क्षेत्र में अब तगड़े प्रतिरोध का सामना करना पड़ रहा है। इस क्षेत्र में क्षेत्रीय शक्तियां चीन के आक्रामक तेवरों का मुकाबला करने के लिए नए गठबंधन बना रही हैं। एक जैसी सोच रखने वाले देश हिंद-प्रशांत में चीन के उभार को काबू में रखने के लिए एक नया सुरक्षा ढांचा खड़ा करना जरूरी मान रहे हैं। भले ही एक औपचारिक व्यवस्था के आकार लेने में वक्त लगेगा लेकिन अनौपचारिक गठबंधन तेजी से बढ़ रहे हैं और आज मुद्दा-आधारित गठबंधन सामान्य हो चुके हैं। यह साफ है कि चीन के हठधर्मी रवैये को चुनौती का सामना करना होगा।

शायद चीन के लिए सबसे अहम अपने केंद्रीय हितों से जुड़ी वे समस्याएं हैं जिन्हें संभाल पाना भारी पड़ रहा है। शिनच्यांग क्षेत्र में उइगर अल्पसंख्यकों के साथ चीनी सत्ता का बरताव दुनिया भर में आलोचना का मुद्दा बन रहा है। पड़ोसी ताइवान में भी चीन की मंशा को लेकर अविश्वास बढ़ रहा है और वहां पर चीन-विरोधी राजनीतिक नेतृत्व को समर्थन बढ़ता जा रहा है। उधर हॉन्ग कॉन्ग में चीन को थ्येन आन मन संहार के बाद पहली बार ऐसे संकट का सामना करना पड़ रहा है।

शी ने अपने संबोधन में हॉन्ग कॉन्ग की दीर्घकालिक समृद्धि एवं स्थायित्व बनाए रखने का वादा करते हुए कहा कि इस व्यापारिक शहर को आंशिक स्वायत्तता देने वाला 'एक देश, दो व्यवस्था' का राजनीतिक ढांचा बना रहेगा। चीनी सत्ता को अब तक यह साफ हो चुका होगा कि शी की यह प्रतिबद्धता अब हॉन्ग कॉन्ग में कारगर नहीं रह गई है। विवादास्पद प्रत्यर्पण विधेयक को लेकर हॉन्ग कॉन्ग में शुरू हुए सत्ता-विरोधी प्रदर्शन कहीं बड़ा दायरा बना चुके हैं। और चीन के साथ भावी प्रावधान तय करने में अब इस गुस्से की केंद्रीय भूमिका होगी। जब चीन अपनी साम्यवादी सत्ता की वर्षगांठ मना रहा था तो हॉन्ग कॉन्ग में पुलिस गोलीबारी में एक किशोर की मौत के बाद हालात बदतर हो गए।

चीन जहां अपने राजनीतिक विकास में हासिल बड़े मुकाम का जश्न मना रहा है वहीं उसके नेतृत्व को घरेलू एवं वैश्विक स्तर पर पिछले कुछ वर्षों में तेजी से बदले हालात का सामना करना पड़ रहा है। चीन के उदय की भावी राह इसी बात से तय होगी कि इन चुनौतियों का सामना कितनी बखूबी से किया जाएगा?

(लेखक किंग्स कॉलेज लंदन के रक्षा अध्ययन विभाग में प्रोफेसर हैं)

सार्वजनिक क्षेत्र के मामले में मोदी सरकार का तरीका समस्यापरक

दिल्ली डायरी

ए के भट्टाचार्य

बीएसएनएल, एमटीएनएल और एफसीआई जैसे संगठनों की वित्तीय परेशानियां सार्वजनिक क्षेत्र के संगठनों के प्रति मोदी सरकार के रवैये को दर्शाती हैं

नरेंद्र मोदी सरकार के अपने प्रशासकीय नियंत्रण वाली सार्वजनिक इकाइयों के साथ कार्य-व्यवहार के कई स्तर हैं। मसलन, भारतीय रेल समेत करीब 250 केंद्रीय सार्वजनिक संगठनों में इक्विटी डालने का इसका फैसला। मोदी सरकार ने अपने कार्यकाल के पहले पांच वर्षों में इन उपक्रमों में इक्विटी के तौर पर करीब 6.26 लाख करोड़ रुपये डाले। यह राशि मनमोहन सिंह सरकार के समय 2009-10 से लेकर 2013-14 के दौरान सार्वजनिक इकाइयों में डाली गई इक्विटी का करीब तिगुनी थी।

लेकिन सार्वजनिक क्षेत्र में डाली गई इक्विटी की संरचना पर करीबी नजर डालें तो थोड़ी अलग तस्वीर उभरकर सामने आती है। मोदी के पहले कार्यकाल में सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों की पूंजी कुल इक्विटी निवेश का करीब 40 फीसदी है। इसमें भारतीय रेल की हिस्सेदारी 33 फीसदी, भारतीय राष्ट्रीय राजमार्ग प्राधिकरण (एनएचएआई) की हिस्सेदारी 18 फीसदी और एयर इंडिया की हिस्सेदारी तीन फीसदी है। इस तरह सार्वजनिक क्षेत्र की चार इकाइयों का कुल हिस्सा पांच वर्षों में किए गए कुल इक्विटी निवेश का 94 फीसदी रहा है।

दूसरे शब्दों में, करीब 250 सार्वजनिक संगठनों में से केवल चार में ही इतनी इक्विटी डाल दी गई कि बाकी सार्वजनिक इकाइयों में पांच साल के भीतर केवल छह फीसदी राशि यानी 34,931 करोड़ रुपये ही डाले जा सके। लिहाजा अगर आप यह सोच रहे थे कि मोदी सरकार ने सार्वजनिक क्षेत्र के सभी संगठनों को इक्विटी आवंटन में सदाशयता दिखाई तो इस पर दोबारा गौर करें। उसने सार्वजनिक क्षेत्र की समूची इक्विटी का 94 फीसदी हिस्सा केवल चार इकाइयों में ही बांट दिया। मनमोहन सरकार इक्विटी आवंटन के मामले थोड़ी अधिक लोकतांत्रिक थी। उसने 2009-14 के दौरान सार्वजनिक संगठनों के लिए जो 2.34 लाख करोड़ रुपये का इक्विटी आवंटन किया था उसमें से 45 फीसदी भारतीय रेलवे, 20 फीसदी एनएचएआई, 19 फीसदी सार्वजनिक बैंकों और छह फीसदी एयर इंडिया को दिया गया था। इस तरह इन चार संगठनों के खाते में कुल इक्विटी आवंटन का 90 फीसदी हिस्सा आया था और बाकी 10 फीसदी इक्विटी अन्य सार्वजनिक संगठनों के लिए था। इस संदर्भ में पिछले हफ्ते घटित दो घटनाओं पर खास ध्यान देने की जरूरत है। पहला, सरकार दो खस्ताहाल संचार कंपनियों- बीएसएनएल एवं एमटीएनएल को मुश्किल से उबारने के लिए दूरसंचार मंत्रालय की तरफ से पेश प्रस्ताव पर फिर से सोचने की मुद्रा में दिख रही है। राहत पैकेज पर पुनर्विचार का जाहिर कारण तो इसकी ऊंची लागत ही लग रही है जिस पर 74,000 करोड़ रुपये से अधिक खर्च आने का अनुमान है। इस तरह की समीक्षा समझी जा सकती है। दोनों उपक्रमों के कर्मचारियों को स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति योजना (वीआरएस) के जरिये मुआवजा पैकेज देने के बाद उन्हें बंद करने के सुझाव पर गौर किया जा सकता है। और इन दोनों को बंद करने पर आने वाली लागत अपेक्षाकृत सस्ती पड़ेगी क्योंकि बहुतेरे कर्मचारी सीधी भर्तियों के जरिये इनका हिस्सा नहीं हैं। एक रिपोर्ट के मुताबिक, कुल कर्मचारियों के महज 10 फीसदी ही सीधी भर्ती के जरिये रखे गए हैं जिनमें बड़ी संख्या तकनीकी पदों की है। इन लोगों को वीआरएस देने पर बहुत लागत नहीं आएगी। बाकी कर्मचारी या तो भारतीय दूरसंचार सेवा (आईटीएस) के हैं या अन्य सार्वजनिक उपक्रमों से प्रतिनियुक्ति पर तैनात हैं।

लिहाजा जाहिर सवाल यह है कि सरकार ने अपने दो संचार संगठनों को आईटीएस एवं अन्य सार्वजनिक उपक्रमों से ऐसे स्टाफ का बोझ बढ़ाने की अनुमति क्यों दी? इन दोनों संगठनों को आईटीएस संवर्ग या अन्य सरकारी उपक्रमों के अतिरिक्त स्टाफ के लिए पार्किंग स्थल नहीं बनाया जाना चाहिए। उनके कुल राजस्व का तीन-चौथाई हिस्सा कर्मचारियों के वेतन पर ही खर्च हो जाता है। ऐसे में पहला कदम यही होगा कि इन संचार संगठनों को इस बोझ से कैसे आजादी दिलाई जाए और उन्हें न्यूनतम स्टाफ के साथ कारगर ढंग से चलाया जा सके। दोनों संगठनों का एक व्यवहार्य कारोबार एवं ग्राहक आधार है जो किसी भी विरोधी संचार कंपनी के लिए ईर्ष्या का विषय हो सकती है। आगे का रास्ता यही होगा कि इन कंपनियों को ऐसे भारी वेतन बिल के बोझ से निजात दिलाकर उनके कारोबार को एक नई इकाई को सौंप दिया जाए। इस नई इकाई को सार्वजनिक- निजी भागीदारी में गठित करना चाहिए और एक समयबद्ध योजना के तहत सरकार को इस कारोबार से पूरी तरह निकल जाना चाहिए।

पिछले हफ्ते की दूसरी घटना सार्वजनिक क्षेत्र की कंपनी भारतीय खाद्य निगम (एफसीआई) से संबंधित है। सरकार की तरफ से खाद्यान्न की खरीद करने का जिम्मा एफसीआई के पास ही होता है। अपनी अक्षमता एवं जरूरत से ज्यादा कर्मचारी होने के साथ ही सरकार की तरफ से किए जाने वाले बिल भुगतान में देरी भी इसकी समस्या की वजह है। एफसीआई पर भारी कर्ज का बोझ है, उसने बाजार के अलावा राष्ट्रीय लघु बचत कोष जैसी संस्थाओं से भी उधार लिया हुआ है। इसकी वित्तीय मुश्किलें कम होने का नाम नहीं ले रही हैं क्योंकि सरकार उसके बकाये का भी भुगतान नहीं कर रही है।

बीएसएनएल, एमटीएनएल और एफसीआई जैसे संगठनों की वित्तीय परेशानियां सार्वजनिक क्षेत्र के संगठनों के प्रति मोदी सरकार के रवैये को दर्शाती हैं। यह प्रवृत्ति इन संगठनों की वित्तीय सेहत के लिए समस्यापरक होने के साथ नुकसानदायक भी है।

कानाफूसी

तत्काल ट्रेन

ऑनलाइन रेलवे टिकटिंग कंपनी आईआरसीटीसी के शेयर सोमवार को शेयर बाजार में दोगुने बिके। जो निवेशक कंपनी के प्रारंभिक निर्गम के दौरान हिस्सेदारी हासिल करने में नाकाम रहे थे, उन्होंने सोमवार को जमकर शेयर खरीदे। कंपनी के आईपीओ को 111 गुना अभिदान मिला। एक शेयर ब्रोकर ने कंपनी के शेयरो के लिए हुई मारा-मारी की तुलना तत्काल टिकट की बुकिंग से की। उन्होंने कहा कि चूंकि कंपनी को इस कारोबार में एकाधिकार और वर्चस्व हासिल है और इंटरनेट आधारित कंपनियों में बहुत अधिक संभावना है इसलिए निवेशकों को लगा कि आईआरसीटीसी की ट्रेन में सवार होना ही बेहतर है। भले ही उन्हें इस ट्रेन का टिकट तत्काल की प्रीमियम दर पर खरीदना पड़ा। गौरतलब है कि कुछ ट्रेनों के टिकट पर प्रीमियम भी लिया जाता है।

राहत की बात

उत्तर प्रदेश में विपक्षी दलों की आपसी तकरार ने उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री योगी आदित्यनाथ को जरूरी राहत मुहैया कराई है। आदित्यनाथ उत्तर प्रदेश में भारतीय जनता पार्टी के सितारा प्रचारकों में शामिल हैं। उनकी सरकार को 11 विधानसभा सीटों पर होने जा रहे विधानसभा उपचुनाव में अपनी पार्टी की जीत का पूरा भरोसा है। यही कारण है कि वह अभी तक इन सीटों के दौरे तक पर नहीं गए हैं। जबकि इसके उलट वह महाराष्ट्र और हरियाणा में पार्टी के प्रत्याशियों के लिए जमकर प्रचार कर रहे हैं। उत्तर प्रदेश में वह मंगलवार से गुरुवार तक 11 रैलियों को संबोधित करेंगे। राज्य भाजपा नेतृत्व का दावा है कि पार्टी सभी 11 सीटों पर आसान जीत हासिल करेगी।

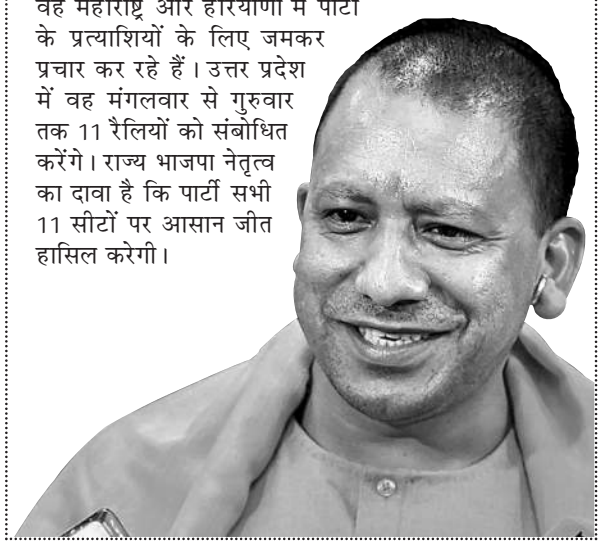

आपका पक्ष

भारत-चीन रिश्ते में भगवान बुद्ध का मार्ग

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी और चीन के राष्ट्रपति शी चिनफिंग की दो दिन की अनौपचारिक बातचीत के परिप्रेक्ष्य में हम एक बात पर प्रमुखता से विचार कर सकते हैं कि भगवान बुद्ध दोनों तरफ है। शांति, अहिंसा, प्रेम इस संदेश को तार्किकता से जोड़ते हुए हम एक ऐसे व्यवहार की कल्पना कर सकते हैं जहां दोनों देश मानवता की कसौटी पर खरा उतरें। भारत की सीमाओं से जो तिब्बत की सीमा लगती है आज वहां प्रत्यक्ष तौर पर चीन की कम्युनिस्ट सरकार का शासन है। सैन्य अभ्यासों के बढ़ते दौर में दोनों देशों के आपसी संबंधों में संदेह तथा अविश्वास भी है। हम एक विश्व नागरिकता के दौर से गुजर रहे हैं जहां पंछी अपने बसेरों को जंजीरों में बंधे हुए नहीं देख सकता। विश्व के सभी समर्थ देश धन शक्ति, ताकत और अपने प्रभाव में निरंतर वृद्धि चाहते हैं। विस्तारवादी नीतियों पर रहकर

पिछले दिनों चीन के राष्ट्रपति शी चिनफिंग भारत की दो दिवसीय यात्रा पर आए थे

हम कैसे हिंदू चीनी भाई-भाई के नारे को बुलंद कर सकते हैं। यहां पर दलाईलामा का एक कथन है कि हम ताकत क्यों चाहते हैं ताकि हम किसी को डरा सकें और यह बुद्ध का दर्शन नहीं है। दलाईलामा इस संदर्भ पर एक सहयोगी विचारधारा की कल्पना करते हुए कहते हैं कि अगर हम किसी की सहायता न कर पाएं तो कोई बात नहीं लेकिन कम से कम किसी के कार्य में बाधा तो बिल्कुल नहीं बनना चाहिए। भारत, तिब्बत और चीन तीनों में बुद्ध की एकता एक है, विचारों की शुभता एक है, हमें आपसी मतभेदों को भुलाकर विचारों का साझा मंच तैयार करना चाहिए। अभी हम सबके लिए एक महत्त्वपूर्ण सवाल यह है कि हिमालय में पिघलते ग्लेशियरों को किस तरह रोका जाए। विकास की नीतियों में किस तरह से बुद्ध के मध्यमार्ग को शामिल किया जाए। जिस प्रकार तितली फूलों से रस भी लेता रहे और फूलों को नुकसान भी नहीं पहुंचे।

शेर सिंह मेरूपा, लाहौल-स्पीति

बैंकिंग क्षेत्र में सुधार की जरूरत

किसी देश की बैंकिंग व्यवस्था जब संकट से गुजरती है तो अर्थव्यवस्था पर भी प्रभाव पड़ता है। देश की अर्थव्यवस्था आज जिस स्थिति में है उसमें बैंकों की बड़ी भूमिका है। बैंकों में घोटाले जैसे पंजाब नैशनल बैंक, पंजाब महाराष्ट्र को-ऑपरेटिव बैंक (पीएमसी बैंक) के बाद लोगों का बैंकों पर से भरोसा उठ रहा है। सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों के सिमटने तथा घोटाले के कारण लोग बैंकों में रुपये जमा करने से कतरा रहे हैं। ऐसे में जब बैंकों में लोग रुपये जमा नहीं करेंगे तो नकदी की कमी होगी जो आने वाले समय में अर्थव्यवस्था के लिए चुनौती भरा होगा। दूसरी ओर अगर बैंकों के नजरिये से देखें तो गैर निष्पादित संपत्तियां (एनपीए) उनके लिए गंभीर समस्या बनी हुई है। सरकार भी इन बैंकों को मरहम लगाने के बजाय खुद इनपर निर्भर है। साथ ही बैंकों पर सरकारी योजनाओं को भी लेकर चलने का बोझ है। रीपो दर में लगातार कटौती रिजर्व बैंक की मजबूरी हो गई है लेकिन इससे कोई खास असर पड़ता नहीं दिख रहा है। इस स्थिति में सरकार को कोई ठोस और दूरदर्शी कदम उठाने होंगे जिससे बैंकों से लेकर इसके ग्राहकों तक को बल मिले और अर्थव्यवस्था को गति दी जा सके।

संजय दूबे, नई दिल्ली

पाठक अपनी राय हमें इस पते पर भेज सकते हैं : संपादक, बिजनेस स्टैंडर्ड लिमिटेड, 4, बहादुर शाह जफर मार्ग, नई दिल्ली - 110002. आप हमें ईमेल भी कर सकते हैं : lettershindi@bsmail.in उस जगह का उल्लेख अवश्य करें, जहां से आप ईमेल कर रहे हैं।